॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कलियुगी गुरुओंसे

सावधान

कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्

राजेन्द्र कुमार धवन

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कलियुगी गुरुओंसे

सावधान

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके विचारोंपर आधारित]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

'हे प्रभो! आप ही मेरी माता हो, आप ही पिता हो, आप ही बन्धु हो, आप ही सखा हो, आप ही विद्या हो, आप ही धन हो। हे देवदेव! मेरे सब कुछ आप ही हो।'

राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273005 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

प्रथम संस्करणका नम्र निवेदन

वर्तमानमें कलियुगका राज्य चल रहा है। इस युगमें सत्यताका तो अभाव हो रहा है और सर्वत्र असत्यका बोलबाला हो रहा है! सज्जन पुरुषोंका अभाव हो रहा है और सर्वत्र दुर्जनोंकी वाह-वाह हो रही है! सच्ची बातोंका अभाव हो रहा है और सर्वत्र बनावटीपना छा रहा है! परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज प्रायः कहा करते थे कि आज सब वस्तुएँ नकली बन रही हैं। दूध नकली, घी नकली, दवाएँ नकली, मसाले नकली, नोट नकली! प्रत्येक वस्तुका नकली रूप इतना बढ़िया बनाया जा रहा है कि अच्छे-अच्छे समझदार व्यक्ति भी धोखा खा जाते हैं, ठगे जाते हैं। फिर गुरु (साधु) भी नकली हो जायँ—इसमें तो कहना ही क्या है! अच्छे-अच्छे बुद्धिमान् व्यक्ति भी ऐसे नकली गुरुओंसे धोखा खा जाते हैं। ऐसे नकली गुरुओंसे बचानेके लिये ही यह पुस्तिका लिखी गयी है।

जो सच्चे गुरु हैं, वे तो इस पुस्तिकाको देखकर हर्षित होंगे, पर जो नकली गुरु हैं, वे इस पुस्तिकासे राजी नहीं होंगे; क्योंकि दुकानदारी खराब होती है! परन्तु हमारा उद्देश्य किसीको दुःख पहुँचानेका नहीं है। चाहे कोई भी हो, हम सबका समान रूपसे हित चाहते हैं। यदि इस पुस्तिकासे एक भी स्त्री या पुरुष कलियुगी साधुओंके चंगुलमें फँसनेसे बच जाय तो हमारा प्रयास सफल हो जायगा।

अक्षय तृतीया
वि०सं० २०६३

सन्तचरणदासानुदास,
राजेन्द्र कुमार धवन

पाठकोंसे प्रार्थना है कि इस विषयको भलीभाँति समझनेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित 'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?' पुस्तक अवश्य पढ़ें।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

विषय-सूची

१. कलियुगी गुरुओंसे सावधान .....

२. हे भगवान्! कितने भगवान्! .....

३. शास्त्रों तथा सन्तोंके वचन .....

४. परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संगृहीत वाक्य .....

५. कपटी गुरु और सच्चा गुरु .....

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कलियुगी गुरुओंसे सावधान!

रामायणमें लिखा है—

गुर बिनु भव निधि तरइ न कोई। जौं बिंरचि संकर सम होई॥

(मानस, उत्तर० ९३। ३)

'गुरुके बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजीके समान ही क्यों न हो।'

परन्तु उसी रामायणमें यह भी लिखा है—

गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥

(मानस, उत्तर० ९९। ३-४)

'शिष्य और गुरुमें बहरे और अंधेका-सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरुके उपदेशको सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है)। जो गुरु शिष्यका धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरकमें पड़ता है।'

तात्पर्य यह निकला कि गुरुकी महिमा अद्वितीय है—इस विषयमें दो मत नहीं हैं। अनादिकालसे गुरु-परम्परा चली आ रही है। परन्तु गुरु-पदका दुरुपयोग भी होता आया है। पाखण्डी, धूर्त, दम्भी, भोगी मनुष्य भी स्वार्थसिद्धिके लिये गुरुकी गद्दीपर बैठ जाते हैं और लोगोंको पतनकी ओर ले जाते हैं। वे खुद तो डूबते ही हैं, साथमें कइयोंको लेकर डूबते हैं। इसलिये शास्त्र और सन्त सदासे ही मनुष्योंको ऐसे पाखण्डी गुरुओंसे सावधान करते आये हैं। पहले तो ऐसा पाखण्डी गुरु कोई-कोई हुआ करता था, पर वर्तमान कलियुगमें तो ऐसे गुरुओंकी भरमार हो रही है! इसलिये वर्तमानमें कलियुगी गुरुओंसे स्वयं सावधान रहना और दूसरोंको सावधान करना बहुत आवश्यक हो गया है।

आज सच्चे सन्तोंके दर्शन अत्यन्त दुर्लभ हो रहे हैं! त्यागी-वैरागी सन्तोंका तो जैसे अभाव-सा हो रहा है। नित्य नये कथावाचक पैदा हो रहे हैं। रुपये कमानेके लिये कथावाचक बनना एक अच्छा पेशा (व्यवसाय) बन गया है। इसलिये कथावाचनके शिक्षण-केन्द्र भी खुल गये हैं। एक विचारकने कहा था—*'हमारे देशमें बेवकूफोंकी कमी नहीं है, बल्कि बेवकूफ बनानेवालोंकी कमी है!'* इसलिये यह व्यवसाय अच्छा फल-फूल रहा है!

आजसे लगभग ३५-४० वर्ष पहले ही परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजने अपने प्रवचनमें स्त्री-पुरुषोंको सावधान करते हुए कहा था कि 'एक बड़ा तूफान आ रहा है! अब कलियुग साधुओंके रूपमें आ रहा है। स्त्रियोंको चाहिये कि बाहर कहीं न जाकर घरमें ही रहकर पूजा-पाठ, स्वाध्याय आदि करें।' गीताप्रेसके संस्थापक श्रीजयदयालजी गोयन्दकाने भी लिखा है कि *'वर्तमान युग स्त्रियोंके लिये विशेष भयानक है। उनके लिए पग-पगपर खतरा है।'*

आजकलके कलियुगी गुरु रुपयों और स्त्रियोंके लिये मानो भूखे कुत्तेकी तरह हैं! रुपयों और स्त्रियोंको देखते ही उनकी लार टपकने लगती है! जितने भी दुर्गुण हैं, उन सबमें स्त्रीकी आसक्ति सबसे गहरी होती है। इसलिये श्रीस्वामीजी महाराजने लिखा है—'जो वायु-भक्षण करके, जल पीकर और सूखे पत्ते खाकर रहते थे, वे विश्वामित्र, पराशर आदि भी स्त्रियोंके सुन्दर मुखको देखकर मोहको प्राप्त हो गये! ऐसी स्थितिमें जो जवान स्त्रियोंको अपनी चेली बनाते हैं, उनको अपने आश्रममें रखते हैं, उनका स्वप्नमें भी कल्याण हो जायगा—यह बात मेरेको जँचती नहीं। फिर उनके द्वारा आपका

भला कैसे हो जायगा? केवल धोखा ही होगा।'

जो कलियुगी गुरु व्यभिचारमें लिप्त हैं, वे आज टेलीविजनमें प्रवचन करते हुए दीख रहे हैं! ऐसे कुछ व्यभिचारी गुरुओंके निकटस्थ सेवक श्रीस्वामीजी महाराजके पास जाकर एकान्तमें अपने गुरुकी अन्तरंग लीलाएँ सुनाया करते तो सुनकर सिर शर्मसे झुक जाता था। वे अपने गुरुके काले कारनामोंको इस डरसे सार्वजनिक नहीं करते कि ऐसा करनेसे उनके प्राण संकटमें पड़ जायँगे। एक विचारकने ठीक ही कहा था कि *'जो मनुष्य समाजके कचरे हैं और कूड़ेदानमें फेंक देनेयोग्य हैं, वे आज गुरु बनकर अपनी पूजा करवा रहे हैं! जो लोग उन्हें पूज रहे हैं, उन्हें ऐसा करनेकी बुद्धि भी उन्हीं गुरुओंकी दी हुई है। आपको जेलोंमें उन गुरुओंकी अपेक्षा अच्छे व्यक्ति मिल जायँगे'* आदि-आदि।

'गुरु-गीता' जैसी गुरुकी महिमा बतानेवाली पुस्तकें चेलोंके लिये हैं, न कि गुरुओंके लिये। पर आजकल गुरु ही अपने चेलोंको वे पुस्तकें पढ़नेके लिये देते हैं! गुरुकी महिमा भी गुरु ही बता रहे हैं! इसलिये श्रीस्वामीजी महाराज लिखते हैं—'जिनको गुरु बननेका शौक है, वही ऐसा प्रचार करते हैं कि गुरु बनाना बहुत जरूरी है, बिना गुरुके मुक्ति नहीं होती। चेलेको अपनेमें लगाने वाले कालनेमि अथवा कपट-मुनि होते हैं, गुरु नहीं होते। गुरु वे होते हैं, जो चेलेको भगवान्‌में लगाते हैं।'

कालनेमि राक्षसने हनुमान्‌जीसे कहा था कि तुम तालाबमें स्नान करके मेरे पास आओ, मैं तुम्हें मन्त्र दूँगा, जिससे तुम्हें ज्ञान प्राप्त हो जायगा। हनुमान्‌जी स्नान करके आये और बोले कि 'गुरुजी, आप गुरु-दक्षिणा ले लो, पीछे मुझे मन्त्र देना', और उसे पूँछसे लपेटकर पछाड़ दिया!

शास्त्रमें आया है कि प्राचीन युगोंमें जो राक्षस थे, वे ही कलियुगमें प्रायः ब्राह्मण (साधु) बनकर दूसरोंको अधर्ममें लगायेंगे, उनका पतन करेंगे—'**पूर्वं ये राक्षसा राजंस्ते कलौ ब्राह्मणाः स्मृताः**' (देवीभागवत ६। ११। ४२), '**विप्ररूपाणि रक्षांसि**' (हरिवंश० भविष्य० ४। १६)। वे ही राक्षस आज गुरु बने बैठे हैं!

आजकलके गुरु बड़े राजनीतिज्ञ हो गये हैं और लोगोंको फँसानेके लिये तरह-तरहके हथकण्डे अपना रहे हैं। अपने प्रचारके लिये वे एजेण्ट रखते हैं। एजेण्ट गुरुजीके मनगढ़ंत चमत्कारोंको सुनाकर लोगोंको फँसाते हैं, उनका 'ब्रेन-वाश' करते हैं अर्थात् उनकी बुद्धि पलट देते हैं। अब सच्चाईकी सी.आई.डी. जाँच कौन कराये? कभी किसीके सामने गुरुजीकी पोल खुल जाती है तो उसे रुपये देकर दबा दिया जाता है अथवा उसे डरा दिया जाता है। वेतन देकर ऐसे व्यक्ति रखे जाते हैं जो अनेक पुस्तकोंसे नकल करके गुरुजीके नामसे एक नयी पुस्तक बना देते हैं। साथ ही एक कागज भी तैयार कर देते हैं, जिसे देखकर गुरुजी भाषण दे सकें। ये कलियुगी गुरु इतने बेलगाम, दुःसाहसी हो गए कि असली गीता और रामायणको छोड़कर अपने नामकी गीता और रामायण बनाने लगे हैं! टेलीविजन तो ऐसे कलियुगी गुरुओंके लिये वरदान सिद्ध हो रहा है!

शास्त्र और सन्त सदासे ही पाखण्डी गुरुओंकी निन्दा करते आये हैं। श्रीस्वामीजी महाराजने भी अपने जीवन-कालमें ऐसे गुरुओंका घोर विरोध किया और लोगोंको उनसे बचानेका पूरा प्रयत्न किया। कलियुगी गुरुओंके शिकार अनेक स्त्री-पुरुष श्रीस्वामीजी महाराजसे मिलकर अथवा पत्र द्वारा अपनी आपबीती सुनाया करते थे। इसीलिये पहले श्रीस्वामीजी महाराजने '**सच्चा गुरु कौन?**' नामक पुस्तक लिखवायी। फिर एक बार किसी तथाकथित गुरुके यहाँसे श्रीस्वामीजी महाराजको गाली-गलौच तथ धमकियोंसे भरा एक लम्बा पत्र मिला। श्रीस्वामीजी महाराजने बाल-चापल्य जानकर उसका कोई उत्तर

नहीं दिया। बादमें उन्होंने '**क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?**' नामक पुस्तक लिखवायी।† इस पुस्तकमें श्रीस्वामीजी महाराजने लिखा है—

'गुरु-विषयक मेरे विचारोंको गहराईसे न समझनेके कारण कुछ लोग कह देते हैं कि मैं गुरुकी निन्दा या खण्डन करता हूँ। यह बिल्कुल झूठी बात है। **मैं गुरुकी निन्दा नहीं करता हूँ, प्रत्युत पाखण्डकी निन्दा करता हूँ।** गुरुका खण्डन तो कोई कर सकता ही नहीं। गुरुजनोंकी मेरेपर बड़ी कृपा रही है और गुरुजनोंके प्रति मेरे मनमें बड़ा आदरभाव है।* गुरुजनोंसे मेरेको लाभ भी हुआ है। परन्तु जो लोग गुरु बनकर लोगोंको ठगते हैं, उनकी प्रशंसा कैसे होगी? उनकी तो निन्दा ही होगी।'

गुरुके विषयमें एक श्लोक कहा जाता है—

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

ऐसा कहनेका तात्पर्य है कि शिष्यका सच्चे गुरुमें मनुष्यभाव नहीं होना चाहिये, अपितु ब्रह्मा, विष्णु और महेशका भाव होना चाहिये। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने पतिको परमेश्वर मानती है तो इससे उसका पति सभी स्त्रियोंके लिये परमेश्वर नहीं हो जाता। प्रत्येक स्त्रीका अपना पति ही उसके लिए परमेश्वर होता है। इसी तरह शिष्य अपने गुरुको ब्रह्मा-विष्णु-महेश मानता है तो वह गुरु सबके लिये ब्रह्मा-विष्णु-महेश नहीं हो जाता। यह तो सच्चे गुरुके प्रति शिष्यका अपना व्यक्तिगत भाव है।

भगवान् कभी किसीको अपना चेला नहीं बनाते, अपितु अपना मित्र ही बनाते हैं। भगवान् श्रीरामने निषादराज, सुग्रीव और विभीषण—तीनोंको अपना मित्र बनाया, चेला नहीं बनाया। गीतामें अर्जुनने तो अपनेको भगवान्‌का शिष्य माना, पर भगवान्‌ने उन्हें शिष्य न मानकर अपना मित्र ही माना—'**भक्तोऽसि मे सखा चेति**' (गीता ४। ३)। कारण यह है कि जो खुद छोटा होता है, वही दूसरेको छोटा बनाता है। जो वास्तवमें बड़ा होता है, वह किसीको छोटा नहीं बनाता।

स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज कहा करते थे कि जो गुरु दूसरोंको अपना चेला तो बना लेता है, पर उनका कल्याण नहीं करता, वह अगले जन्ममें कुत्ता बनता है और चेले चींचड़ बनकर उसका खून चूसते हैं!

एक बार किसी सज्जनने श्रीस्वामीजी महाराजसे पूछा कि मैंने गुरु तो बना लिया, पर अब उनमें मेरी श्रद्धा नहीं रही तो उन्हें छोड़नेसे पाप तो नहीं लगेगा? श्रीस्वामीजी महाराजने उत्तर दिया कि मनमें श्रद्धा नहीं रही तो गुरुका त्याग हो ही गया! किसी मकानकी छत फट जाय तो उसपर मिट्टी डालनेसे कितने दिन काम चलेगा? अतः उस गुरुके त्यागसे पाप नहीं लगेगा।

एक सन्त श्रीस्वामीजी महाराजके पास आये और बोले कि मेरे हृदयमें शान्ति नहीं है, तो श्रीस्वामीजी महाराज बोले कि चेले मूँड़ना छोड़ दो तो शान्ति मिल जायगी!

श्रीस्वामीजी महाराज स्त्रियोंको परपुरुषका चरण-स्पर्श करनेसे मना करते थे। वे कहते थे कि स्त्रीको पतिके सिवाय गुरु, ससुर आदि किसीके भी चरण-स्पर्श न करके उन्हें दूरसे ही प्रणाम करना चाहिये। परन्तु जो गुरु बनकर स्त्रियोंसे अपने चरण-स्पर्श कराते हैं, पैर दबवाते हैं, वे खुद तो भ्रष्ट होते ही हैं, स्त्रियोंको भी भ्रष्ट करते हैं!

---

† 'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं?' और 'सच्चा गुरु कौन?'—ये दोनों पुस्तकें गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित हैं। ये पुस्तकें सबको अवश्य पढ़नी चाहिए।

*** परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज अपने प्रत्येक प्रवचनके मंगलाचरणमें 'श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः' कहकर गुरुको प्रणाम किया करते थे।**

आजकलके गुरुओंको देखकर ही श्रीस्वामीजी महाराज कहते थे कि किसीको गुरु मिल गया तो समझो कि अब कल्याण होना बड़ा मुश्किल है! यदि गुरु बनाना ही हो तो '**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' के अनुसार भगवान् श्रीकृष्णको अपना गुरु मान लो और उनकी गीताको गुरुवाणी मानकर साधनामें लग जाओ। यदि जगद्गुरु भगवान् आवश्यक समझेंगे तो अपने-आप लौकिक गुरुको भी मिला देंगे।

श्रीस्वामीजी महाराजने एक बार भरी सभामें कहा था कि अगर कोई कहता है कि मेरा चेला बननेपर मैं भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा तो मैं उसका चेला बननेके लिये तैयार हूँ! तात्पर्य है कि इसमें केवल ठगाई है।

यह सिद्धान्त है कि किसी विषयमें जब पाप आ जाता है, तब उससे लोगोंकी रक्षा करनेके लिये उस विषयका खण्डन करना आवश्यक हो जाता है। सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका लिखते हैं—

'धर्मकी आड़में जब पाप होने लगता है, आस्तिकताके नामपर नास्तिकताका ताण्डवनृत्य होने लगता है, तब स्वयं भगवान् अथवा उनकी विभूतियाँ धर्म तथा आस्तिकताको शुद्ध रूपमें प्रकट करनेके लिये धर्म एवं आस्तिकताका विरोध तथा अधर्म एवं नास्तिकताका प्रचार करने लगते हैं। आज भी जब कथा-कीर्तन आदिके नामपर जगह-जगह व्यभिचारको आश्रय दिया जाने लगा है, ऐसे समयमें यदि कोई शुद्ध नीयतसे कथा-कीर्तनका विरोध करे तो वह अनुचित नहीं कहा जायगा; क्योंकि वे लोग वास्तवमें कथा-कीर्तनका विरोध नहीं करते, बल्कि उसके नामपर होनेवाले पापाचरणका विरोध करते हैं।' *(तत्त्वचिन्तामणि, भाग-५)*

हे भगवान्! कितने भगवान्!

हिन्दू-संस्कृतिमें भगवान् और उनके अवतारोंका मुख्य स्थान है। कारण कि सन्त-महात्मा तो पृथ्वीमण्डलपर अनेक स्थानोंपर होते आये हैं, पर भगवान्‌के अवतार भारतभूमिपर ही हुए हैं। इसलिये सम्पूर्ण भारतमें भगवान्‌के अवतारोंकी उपासना मुख्यरूपसे की जाती है।

अनेक ऐसे सन्त-महापुरुष हुए हैं, जिन्हें उनके अनुयायी भगवान् मानते हैं। उन अनुयायियोंकी श्रद्धा प्रशंसनीय है। परन्तु इसमें एक विशेष ध्यान देनेयोग्य आपत्ति है। उन सन्तों, सम्प्रदायाचार्योंको भगवान् मान लेनेसे मनुष्य उनके आदर्शोंका, उनके उपदेशोंका अनुसरण नहीं कर पाता। वे तो भगवान् थे, हम उनके समान कैसे बन सकते हैं? हम उनकी बराबरी कैसे कर सकते हैं?' आदि विचार मनुष्यकी उन्नतिमें बाधक बन जाते हैं। इसलिये उन सन्तोंको भगवान्‌से बढ़कर भले ही मान लें, पर भगवान् कभी नहीं मानना चाहिये।

'अवतार' कहते ही उसे हैं, जो ऊपरसे नीचे उतरता है। अतः अवतार भगवान्‌का ही होता है; क्योंकि सबसे ऊँचे भगवान् हैं। सन्त-महापुरुषोंका अवतार नहीं होता, अपितु 'उत्तार' होता है अर्थात् वे साधना करके नीचेसे ऊपर उठते हैं, नरसे नारायण बनते हैं। इसलिये उनके अनुयायियोंमें भी यह धारणा होनी चाहिये कि हम भी अपने आचार्यके समान श्रेष्ठ बन सकते हैं, नरसे नारायण बन सकते हैं।

वास्तवमें मनुष्यकी इज्जत भक्त होनेमें है, भगवान् होनेमें नहीं। भगवान्‌ने भी अपने-आपको भक्तोंका दास कहा है—'**अहं भक्तपराधीनः**' (श्रीमद्भा० ९। ४। ६३); ***'मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि'***।

भगवान्‌के मुख्य अवतारोंकी संख्या और उनके नामों, लीलाओं आदिका वर्णन हमारे शास्त्रोंमें विस्तारसे

किया गया है। उनमेंसे एक कल्कि-अवतारको छोड़कर शेष सभी अवतार हो चुके हैं। परन्तु भारतवासियोंकी मान्यताओंको देखा जाय तो भगवान् और उनके अवतारोंकी संख्या अगणित हो जाती है! कारण यह है कि भारतीयोंके अन्त:करणमें भगवान् तथा भगवदवतारोंकी महत्ता इतनी गहरी बैठी हुई है कि वे सन्त-महात्माओंको तो सहज ही भगवान् मान लेते हैं, सामान्य मनुष्यके चमत्कार आदिको देख-सुनकर उसे भी भगवान्, जीवन्मुक्त आदि मानने लग जाते हैं।* लोगोंकी इस अन्धश्रद्धाका लाभ उठाकर न जाने कितने कंचन-कामिनीके लोभी मनुष्य भी बिना सिद्ध हुए ही भगवान्, सन्तशिरोमणि, जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञानी, ब्रह्मनिष्ठ आदि कहलानेका सुख भोग रहे हैं! ऐसे तथाकथित भगवानोंने न जाने कितने लोगोंका धन लूटा है, कितनोंकी जमीन हड़पी है, कितनी स्त्रियोंका सतीत्व भंग किया है! ऐसे दुष्टोंको भगवान् कहें या कलियुगका अवतार? पाठक स्वयं विचार करें।

भगवान् अवतार लेकर साधुपुरुषोंकी रक्षा, दुष्टोंका विनाश तथा धर्मकी संस्थापना करते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ७-८)

'हे भरतवंशी अर्जुन! जब-जब धर्मकी हानि और अधर्मकी वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने-आपको (साकाररूपसे) प्रकट करता हूँ। साधुओं (भक्तों)-की रक्षा करनेके लिये, पापकर्म करनेवालोंका विनाश करनेके लिये और धर्मकी भलीभाँति स्थापना करनेके लिये मैं युग-युगमें प्रकट हुआ करता हूँ।'

परन्तु आजकल एक नहीं, अनेक भगवानोंके रहते हुए भी उत्तरोत्तर साधु-पुरुषोंका ह्रास, दुष्टोंका विकास तथा धर्मका विनाश हो रहा है! उल्टे वे भगवान् रात-दिन अपना ही विकास करनेमें लगे हुए हैं! भगवान् कभी किसीको अपना शिष्य नहीं बनाते, अपितु सबको अपना सखा बनाते हैं। भगवान् श्रीराम और श्रीकृष्णने कितने चेले ओर चेलियाँ बनायीं? कितने आश्रम बनाये? परन्तु आजकलके भगवानोंके पास चेले-चेलियाँ बनाने, पूर्ण सुख-सुविधायुक्त आश्रम बनाने, रुपये जमा करनेके सिवाय और कुछ काम ही नहीं है!

अगस्त्य ऋषिने समुद्र पी लिया, विश्वामित्रने नयी सृष्टिकी ही रचना कर डाली, कपिल मुनिने साठ हजार सगरपुत्रोंको भस्म कर दिया, च्यवन ऋषि वृद्धसे युवा बन गये, राजा भगीरथने गंगाको पृथ्वीपर उतार लिया, सती सावित्रीने अपने पतिको मृत्युसे छुड़ा लिया, सती शाण्डिलीने सूर्यकी गति रोक दी, अत्रि ऋषिने चन्द्र और सूर्य बनकर पृथ्वीका अन्धकार दूर किया, आदि-आदि; पर किसीने भी अपनेको भगवान् नहीं कहा। परन्तु आजकल छोटे-छोटे चमत्कार दिखाकर लोग भगवान् कहलाने लगते हैं! ये चमत्कार तो एक चतुर जादूगर भी दिखा सकता है, पर वेश-भूषा अलग-अलग होनेसे एक जादूगर कहलाता है, एक भगवान्!

पं० श्रीमाधवाचार्य शास्त्रीजीसे किसी ईसाई पुरुषने कहा कि तुम्हारे भगवान् मक्खन चुराया करते थे, हम भी तुम्हारे घर चोरी करने आयेंगे। उन्होंने उत्तर दिया कि हाँ-हाँ, आप बड़ी खुशीसे हमारे घर चोरी करने आयें, पर एक बातका ख्याल रखें, भगवान्ने माखनचोरीसे पहले पूतनाका विषपान किया था। अत: आप भी चोरी करनेसे पहले अधिक नहीं तो एक-डेढ़ तोला संखिया खा लें, फिर

*** जिन्हें लोग भगवान्, जीवन्मुक्त आदि कहते हैं, वे प्राय: सामान्य अथवा उच्चकोटिके साधक ही होते हैं। जीवन्मुक्ति स्वसंवेद्य स्थिति है।**

चाहे जितनी चोरी करें!

आजकल न जाने कितने पाखण्डीजन भगवान् बने बैठे हैं। ये भगवान् भी परस्पर एक-दूसरेको भगवान् माननेको तैयार नहीं! उल्टे आपसमें लड़ते हैं, एक-दूसरेका खण्डन करते हैं। साधु-पुरुषोंका ह्रास, दुष्टोंका विकास तथा धर्मका विनाश करके कलियुगकी वृद्धिके लिये अभी न जाने ऐसे कितने भगवान् प्रकट होंगे!

शास्त्रों तथा सन्तोंके वचन

कलियुगी गुरुओंके विषयमें शास्त्रों तथा सन्तोंने क्या कहा है? इसका कुछ नमूना कृपया ध्यानसे पढ़ें।

शास्त्र-वचन

अन्नदानपरो भिक्षुर्वस्त्रादीनां परिग्रही।
उभौ तौ मन्दबुद्धित्वात् पूतीनरकशायिनौ॥

(यतिधर्मसंग्रह)

'अन्नदानमें लगा हुआ और वस्त्र आदिका संग्रह करनेवाला—ये दोनों ही प्रकारके संन्यासी नरकमें जाते हैं।'

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।

(श्रीमद्भा० ११। ८। १३)

'संन्यासीको चाहिये कि वह लकड़ीसे बनी हुई स्त्रीका भी स्पर्श न करे। हाथसे स्पर्श करना तो दूर रहा, पैरसे भी स्पर्श न करे।'

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा सेवते मैथुनं पुनः।
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः॥

(स्कन्दपुराण, काशी०पू० ४०। १०७)

'जो संन्यास ग्रहण करनेके बाद पुनः स्त्री-संग करता है, वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है।

'पतिरेव गुरुः स्त्रीणाम्' (वृद्धगौतमस्मृति १२। ७, ब्रह्मपुराण ८०। ४८)

'पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्' (औशनसस्मृति १। ४८, पद्मपुराण, स्वर्ग० ५१। ५२)

'एकमात्र पति ही स्त्रियोंका गुरु है। अतः स्त्रीको पतिके सिवाय किसीको भी गुरु नहीं बनाना चाहिये।'

निषिद्धगुरुशिष्यस्तु दुष्टसंकल्पदूषितः।
ब्रह्मप्रलयपर्यन्तं न पुनर्याति मर्त्यताम्॥

(गुरुगीता २८२)

'जो मनुष्य दुष्ट संकल्पवाले दुराचारी गुरुका शिष्य बनता है, उसे महाप्रलयपर्यन्त पुनः मनुष्यशरीर नहीं मिलता।'

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः।
उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते॥

(महाभारत, उद्योग० १७६। ४८)

'यदि गुरु भी घमण्डमें आकर कर्तव्य-अकर्तव्यका ज्ञान खो बैठे और गलत रास्तेपर चलने लगे तो उसका त्याग कर देना चाहिये।'

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो मिथ्यावादी विडम्बकः।
स्वविश्रान्तिं न जानाति परशान्तिं करोति किम्॥

(गुरुगीता)

'ज्ञानरहित, मिथ्यावादी और भ्रम पैदा करनेवाले (ठग) गुरुका त्याग कर देना चाहिये; क्योंकि जो खुद शान्ति प्राप्त नहीं कर सका, वह दूसरोंको शान्ति कैसे देगा?'

यत्रानन्दः प्रबोधो वा नाल्पमप्युपलभ्यते।
वत्सरादपि शिष्येण सोऽन्यं गुरुमुपाश्रयेत्॥

(शिवपुराण, वा०उ० १५। ४६। ४९)

'जिस गुरुके पास एक वर्षतक रहनेपर भी शिष्यको थोड़े-से भी आनन्द और प्रबोधकी उपलब्धि न हो, वह शिष्य उसे छोड़कर दूसरे गुरुका आश्रय ले।'

गुरवो बहवः सन्ति शिष्यवित्तापहारकाः।
तमेकं दुर्लभं मन्ये शिष्यहृत्तापहारकम्॥

(गुरुगीता)

'शिष्यके धनका हरण करनेवाले गुरु तो बहुत हैं, पर शिष्यके हृदयका ताप हरण करनेवाले गुरु दुर्लभ हैं।'

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत्॥

(गुरुगीता)

'मधुका लोभी भ्रमर जैसे एक पुष्पसे दूसरे पुष्पकी ओर जाता है, ऐसे ही ज्ञानका लोभी शिष्य एक गुरुसे दूसरे गुरुकी ओर जाय।'

आत्मनो गुरुरात्मैव पुरुषस्य विशेषतः।

(श्रीमद्भा० ११। ७। २०)

'वास्तवमें मनुष्य आप ही अपना गुरु है।'

अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः।
त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम्॥

(श्रीमद्भा० ८। २४। ५०)

'(राजा सत्यव्रतने भगवान्‌से कहा—) हे प्रभो! जैसे कोई अंधा अंधेको ही अपना पथ-प्रदर्शक बना ले, वैसे ही अज्ञानी जीव अज्ञानीको ही अपना गुरु बनाते हैं। आप सूर्यके समान स्वयंप्रकाश और समस्त इन्द्रियोंके प्रेरक हैं। हम आत्मतत्त्वके जिज्ञासु आपको ही गुरुके रूपमें वरण करते हैं।'

सन्त-वचन

श्रीमद्गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज

कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ।
दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥

'कलियुगके पापोंने सब धर्मोंको ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ लुप्त हो गये, दम्भियोंने अपनी बुद्धिसे कल्पना

कर-करके बहुत-से पंथ प्रकट कर दिये।'

मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहुँ संत कहइ सब कोई॥

'जो मिथ्या आरम्भ करता (आडम्बर रचता) है और जो दम्भमें रत है उसीको सब कोई सन्त कहते हैं।

निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥
जाकें नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥

'जो आचारहीन है और वेदमार्गको छोड़े हुए है, कलियुगमें वही ज्ञानी और वही वैरागी है। जिसके बड़े-बड़े नख और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं, वही कलियुगमें प्रसिद्ध तपस्वी है।'

जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥

'जिनके आचरण दूसरोंका अहित करनेवाले हैं, उन्हींका बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मानके योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्मसे झूठ बकने वाले हैं, वे ही कलियुगमें वक्ता माने जाते हैं।'

गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥

'शिष्य और गुरुमें बहरे और अंधेका-सा हिसाब होता है। शिष्य तो गुरुकी बात सुनता नहीं और गुरु देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि प्राप्त नहीं है)।'

हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥

'जो गुरु शिष्यका धन तो हरण करता है, पर शोक हरण नहीं करता, वह घोर नरकमें पड़ता है।'

पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥
तेइ अभेदबादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर॥

'जो परायी स्त्रीमें आसक्त, कपट करनेमें चतुर और मोह, द्रोह तथा ममतामें लिपटे हुए हैं, वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीवको एक बतानेवाले) ज्ञानी हैं। मैंने कलियुगका यह चरित्र देखा।'

बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

'संन्यासी बहुत धन लगाकर आश्रम सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयोंने हर लिया। तपस्वी धनवान् हो गये और गृहस्थ दरिद्र। हे तात। कलियुगकी लीला कुछ कही नहीं जाती।'

नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥

'जो वेदों और पुराणोंको नहीं मानते, कलियुगमें वे ही हरिभक्त और सच्चे सन्त कहलाते हैं।'

(श्रीरामचरितमानस, उत्तर०, दोहा ९७ से १०१)

स्वामी श्रीविवेकानन्दजी

शक्ति-संचारक गुरुके सम्बन्धमें तो और भी बड़े खतरोंकी सम्भावना है। बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो स्वयं तो बड़े अज्ञानी हैं, परन्तु फिर भी अहंकारवश अपनेको सर्वज्ञ समझते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि दूसरोंको भी अपने कंधोंपर ले जानेको तैयार रहते हैं। इस प्रकार अन्धा अन्धेका अगुवा बन जाता है, फलतः दोनों ही गड्ढेमें गिर पड़ते हैं। अज्ञानसे घिरे हुए, अत्यन्त निर्बुद्धि होनेपर भी अपनेको महापण्डित समझनेवाले मूढ़ व्यक्ति, अन्धेके नेतृत्वमें चलनेवाले अन्धोंके समान चारों ओर ठोकरें खाते हुए भटकते फिरते हैं। संसार ऐसे लोगोंसे भरा पड़ा है। हर एक आदमी गुरु होना चाहता है। एक भिखारी भी चाहता है कि वह लाखोंका दान कर डाले। जैसे हास्यास्पद ये भिखारी हैं, वैसे ही ये गुरु भी। *(विवेकानन्द-साहित्य, खण्ड-४)*

स्वामी श्रीपरमानन्दजी

कानमें फूँक लगाकर आजकल जो गुरु बन जाते हैं, वे तो अपनी जीविकाके वास्ते करते हैं। आजकल भारतवर्षमें दम्भ-पाखण्ड बहुत बढ़ गया है। इसीवास्ते दम्भीलोग वेद और शास्त्रकी रीतिको हटाकर अपने नये-नये पाखण्डोंको चलाकर, नये-नये मन्त्रोंको बनाकर मूर्खोंके कान फूँककर अपनेको पशु बना लेते हैं। वे मूर्ख भी उनके पूरे-पूरे पशु बन जाते हैं और उन्हीं दम्भियों-पाखण्डियोंकी पूजा-सेवा आदि करते हैं। उनका ऐसा व्यवहार वेद-शास्त्रसे विरुद्ध होनेसे नरकका ही हेतु है। इसीवास्ते उनको इस लोक और परलोकमें भी सुख नहीं मिलता है। इसवास्ते मुमुक्षुको उचित है कि स्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनकर संसारमें विचरे। किसी चालाकके फन्देमें फँसकर कान न फुँकवाये, उसका पशु न बने। जो वेदान्ती कहाते हैं और फिर कान फुँकवाकर दूसरेके पशु बनते हैं, वे अत्यन्त मूर्ख हैं। और जो चेलोंके कान फूँक करके उनके गुरु बनते हैं, वे भी वेद-शास्त्रकी रीतिसे स्वार्थी मूर्ख ही कहे जाते हैं; क्योंकि वेद-शास्त्रमें ऐसा लेख नहीं है। किन्तु शिष्यके सन्देहोंको दूर करके, उसको आत्मज्ञानका उपदेश करके उसके अज्ञानको दूर कर देना ही वेदान्तमें गुरु-शिष्यकी रीति है..... जनकजीने याज्ञवल्क्यको गुरु बनाया [गुरु माना] था, कान नहीं फुँकवाये थे। शुकदेवजीने जनकजीको गुरु बनाया था, कानोंमें उनसे मन्त्र नहीं सुना था। याज्ञवल्क्यजीने सूर्यसे उपदेश लिया था, कान नहीं फुँकवाये थे। नचिकेताने यमराजसे आत्मविद्याको लिया था, कान नहीं फुँकवाये थे। विदुरजीने सनत्कुमारसे आत्मविद्याको ग्रहण किया था, कान नहीं फुँकवाये थे। ..... युक्तियोंसे और उपनिषदादिके प्रमाणोंसे यह बात सिद्ध होती है कि वेदान्तके सिद्धान्तमें कान फूँककर गुरु बनना और कान फुँकवाकर चेला बनना—यह व्यवहार नहीं है। इससे जो ऐसा करते हैं वे मूर्ख या दम्भी-पाखण्डी कहे जाते हैं।..... आजकलके कलियुगी मनुष्य वेद और शास्त्रके विरुद्ध व्यवहारका प्रचार करके लोगोंके और अपने धर्मका नाश कर रहे हैं। इसवास्ते मुमुक्षु पुरुषोंको उचित है कि श्रीस्वामी दत्तात्रेयजीकी तरह गुणग्राही बनें और कलियुगी गुरुओंके फन्देमें न फँसें। *(अवधूतगीताकी भाषाटीका)*

सेठजी श्रीजयदयालजी गोयन्दका

(गीताप्रेस, गोरखपुरके संस्थापक)

कलियुग अपना प्रभाव सर्वत्र दिखा रहा है। प्रायः सभी क्षेत्रोंमें दिखावापन आ गया है। मिथ्याचारी लोग प्रायः सभी क्षेत्रोंमें घुसकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। दम्भी मनुष्य अनेक रूप बनाकर,

अनेक वेष धारणकर लोगोंको ठगनेमें लगे हुए हैं। धार्मिक क्षेत्रमें, जहाँ अधिकांश बातें विश्वाससे सम्बन्ध रखनेवाली होती हैं, दम्भके लिये अधिक गुंजाइश रहती है। इसीसे धर्मध्वजी लोग धर्मका बाना ग्रहण कर भोली-भाली जनताको अनेक प्रकारके प्रलोभन देकर, सब्जबाग दिखाकर ठगा करते हैं और इस प्रकार अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। भक्तिके नामपर भी लोग इसी प्रकार भोले-भाले लोगोंको चंगुलमें फँसाकर उनका धन अपहरण करते हैं। **स्त्रियाँ इन बगुले भक्तोंके हथकंडोंकी अधिक शिकारी होती हैं; क्योंकि वे विवेकशक्तिसे कम काम लेती हैं और विश्वासकी मात्रा भी उनमें अधिक होती है। इसीसे वे जल्दी धोखेमें आ जाती हैं और अपने धन तथा सतीत्वको भी, जो भारतीय स्त्रियोंकी सबसे बड़ी सम्पत्ति है, खो बैठती हैं।** तीर्थोंमें, देवालयोंमें, धर्मस्थानोंमें आये दिन इस प्रकारकी घटनाएँ हुआ करती हैं। इसीसे आज धर्म और ईश्वरके प्रति लोगोंकी आस्था कम होती जा रही है। जगत्‌में बढ़ती हुई नास्तिकता तथा धर्मके प्रति उदासीनताके लिये ऐसे ही लोग अधिक जिम्मेवार हैं, जो अपनेको आस्तिक तथा धर्मप्रेमी कहकर अपने आचरणोंद्वारा धर्म और आस्तिकताकी जड़पर कुठाराघात करते हैं। जनताको चाहिये कि ऐसे धर्मध्वजी लोगोंसे खूब सावधान रहे। *(तत्त्वचिन्तामणि, भाग ५)*

*** *** ***

भगवान् तो सबके गुरु हैं ही। योगदर्शनमें स्पष्ट ही ईश्वरका लक्षण करते हुए लिखा है—'**(सः) पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्**' (योग० १। २६)। अतः उनको गुरु मानना तो सर्वोत्तम है ही। इसके सिवा गुरुप्राप्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनेमें भी हानि नहीं है। पर जो लोग यह कहते हैं कि बिना गुरु बनाये भजन तथा नामजप वृथा है, उनका यह कथन ठीक नहीं है, मेरी रायमें उनकी बात नहीं माननी चाहिये। वैसे तो जिस ग्रन्थ या व्यक्तिके संयोगसे साधक साधनामें लगता है, वही उसका गुरु समझा जा सकता है। इस दृष्टिसे तो कोई साधक बिना गुरुके है ही नहीं। श्रीदत्तात्रेयजीने इस दृष्टिसे चौबीस गुरु माने थे। असलमें सबसे बड़ा गुरु भगवान्‌की कृपासे मिला हुआ अपना विवेक है, उसका आदर करनेवाला ही गुरुका आदर करता है। उसका आदर न करनेवाला गुरुसे कोई लाभ नहीं उठा सकता। श्रीतुलसीदासजीने यह भी तो कहा है कि '***मूरख हृदय न चेत जौं गुरु मिलइ बिंरचि सम***'। इसपर ध्यान देना चाहिये। उन्होंने जो बिना गुरुके ज्ञान न होनेकी और मुक्ति न होनेकी बात कही है, उसका यही भाव समझना चाहिये कि जिस साधकको जो भी कुछ उन्नति या समझ प्राप्त हुई है, वह किसी-न-किसीके सत्संगसे ही हुई है और जिसके संगसे उसकी भगवान्‌की ओर प्रगति हुई है, वही उसके लिये गुरु है। *(अध्यात्मविषयक पत्र)*

*** *** ***

महापुरुषोंकी महिमा कहनेमें कुछ संकोच भी होता है और कुछ भय भी। भय तो इस बातसे होता है कि आजकल बहुत-से लोग झूठे महापुरुष बने बैठे हैं और वे अपने पैर पुजवाते हैं, अपनी जूठन खिलाते हैं, अपने चरणोंकी धूलि और चरणोदक देते हैं, अपने नामका कीर्तन करवाते और रूप (फोटो)-को पुजवाते हैं तथा कोई-कोई तो धन और स्त्रियोंके सतीत्वका हरण भी करते हैं। कहीं-कहीं तो साधारण बनिये और शूद्र भी योगिराज, ज्ञानी, महात्मा बने बैठे हैं। कहीं स्त्रियाँ ज्ञानी महात्मा बनकर भोले-भाले नर-नारियोंको ठगती हैं। इसके सिवा, कोई ब्रह्मचारीके वेषमें, कोई गृहस्थके वेषमें, कोई साधुके वेषमें, कोई वानप्रस्थीके वेषमें, कोई तो अपनेको ज्ञानी, भक्त, महात्मा, योगिराज बतलाता है और कोई अपनेको अवतार बतलाता है। सच तो यह है कि इन बतलानेवालोंमें सबमें अन्धकार-ही-अन्धकार है। उच्चकोटिके महापुरुष कभी अपनेको ज्ञानी, महात्मा, भक्त नहीं बतलाते, कभी अपनेको योगिराज या अवतार नहीं बताते, परन्तु जो झूठे दम्भी महात्मा बने होते हैं, वे ही अपनेको पुजवानेके लिये, संसारमें अपनी ख्याति-कीर्तिके लिये या धन और स्त्रियोंका सतीत्व हरण

करनेके लिये ऐसा करते हैं और ऐसा करना संसारको और अपनी आत्माको धोखा देना है। इसका परिणाम उनके लिये अत्यन्त भयावह है।

हमारे इस कथनका वे दम्भी, पाखण्डी, झूठे ज्ञानी महात्मा दुरुपयोग कर सकते हैं कि 'देखो! महापुरुषोंकी ऐसी महिमा इन्होंने बतलायी है और वे महापुरुष हमीं लोग हैं।' इस प्रकारके वचनोंसे लोगोंको धोखा देकर वे अपना स्वार्थ सिद्ध करनेके लिये मेरे उपर्युक्त वाक्योंका दुरुपयोग कर सकते हैं। भोली-भाली स्त्रियाँ उनके बहकावेमें आकर अपना सतीत्व नष्ट कर लेती हैं, धन देती हैं और उनकी पूजा करके अपने और उनके जीवनको कलंकित बनाती हैं तथा परलोकको नष्ट करती हैं। इसलिये महापुरुषोंकी विशेष महिमा कहनेमें मनमें कभी कुछ भय-सा होता है। *(परम साधन)*

*** *** ***

कितने ही धर्मध्वजी मनुष्य आज अपनेको अवतार या महात्मा बतलाकर अनाचार फैला रहे हैं। बहुत-से लोग तो स्त्रियोंको चेलियाँ बनाकर पहले तो उनसे अपने चरण पुजवाते हैं, उन्हें अपना चरणोदक देते हैं, अपनी जूठन खिलाते हैं और बादमें वे अपनेको कृष्णका रूप बतलाकर उन्हें गोपी बनाकर और व्यभिचारको धर्म बतलाकर उनके साथ दुराचार करते हैं और उसका फल वे दम्भी दुराचारपरायण लोग परमधामकी प्राप्ति बतलाते हैं। ऐसे धर्मके नामपर दुराचार करनेवाले पाखण्डी यथार्थमें भगवान् श्रीकृष्णको तथा भक्तिमती गोपियोंको कलंक लगानेवाले हैं। *(तत्त्वचिन्तामणि, भाग ७)*

भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार

('कल्याण' मासिक-पत्रके आदि सम्पादक)

आजकल सच्चे गुरु प्रायः नहीं मिलते। यथार्थ गुरु सदा ही कठिनतासे मिलते थे। फिर आजकल तो बहुत-से लोभी-लालची और कामी-कपटी लोग गुरु बन गये हैं, इसलिये गुरुवेश कलंकित-सा हो गया है। इसलिये बहुत ही सावधानीसे गुरु बनाना चाहिये। गुरुमें इतने गुण अवश्य होने चाहिये—

'स्वभाव शुद्ध हो, जितेन्द्रिय हो, धनका लालच जिसे हो ही नहीं, वेदशास्त्रोंका ज्ञाता हो, सत्य-तत्त्वको पा चुका हो, परोपकारी हो, दयालु हो, नित्य जप-तपादि साधनोंको स्वयं (चाहे लोक-संग्रहार्थ ही) करता हो, सत्यवादी हो, शान्तिप्रिय हो, योगविद्यामें निपुण हो, जिसमें शिष्यके पापनाश करनेकी शक्ति हो, जो भगवान्‌का भक्त हो, स्त्रियोंमें अनासक्त हो, क्षमावान् हो, धैर्यशाली हो, चतुर हो, अव्यसनी हो, प्रियभाषी हो, निष्कपट हो, निर्भय हो, पापोंसे बिल्कुल परे हो, सदाचारी हो, सादगीसे रहता हो, धर्मप्रेमी हो, जीवमात्रका सुहृद् हो, शिष्यको पुत्रसे बढ़कर प्यार करता हो।'

जिनमें ये गुण न हों और निम्नलिखित अवगुण हों, उन्हें गुरु नहीं बनना चाहिये—

'जो संस्कारहीन हो, वेद-शास्त्रको जानता-मानता न हो, कामिनी-कंचनमें आसक्त हो, लोभी हो, मान, यश और पूजा चाहता हो, वैदिक और स्मार्त कर्मोंको न करता हो, क्रोधी हो, शुष्क या कटुभाषण करता हो, असत्य बोलता हो, निर्दयी हो, पढ़ाकर पैसा लेता हो, कपटी हो, शिष्यके धनकी ओर दृष्टि रखता हो, मत्सर करता हो, नशेबाज, जुआरी या अन्य किसी प्रकारका व्यसनी हो, कृपण हो, दुष्टबुद्धि हो, बाहरी चमत्कार दिखलाकर लोगोंके चित्त हरता हो, नास्तिक हो, ईश्वर और गुरुकी निन्दा करता हो, अभिमानी हो, बुरी संगतिमें रहता हो, भीरु हो, पातकी हो, देवता, अग्नि और गुरुमें श्रद्धा न रखता हो, संध्या-तर्पण, पूजा और मन्त्र आदिके ज्ञानसे रहित हो, आलसी हो, विलासी हो, धर्महीन हो, संन्यासी होकर त्यागी न हो और गृहस्थ होकर गृहिणीरहित हो, शक्तिहीन हो और वृषलीपति हो।'

स्त्रियोंको किसी भी अन्य पुरुषसे दीक्षित होनेकी या किसी पर-पुरुषको गुरु बनानेकी आवश्यकता

नहीं है। सिद्धमन्त्र स्वामी अपनी पत्नीको दीक्षा दे सकता है। दीक्षा न दे तो भी पति उसका परम गुरु ही है। विधवा स्त्री केवल श्रीपरमात्माको ही गुरु समझकर उन्हींका सेवन करे। जो धन और कामिनीका लोभी मालूम हो, ऐसे गुरुसे सदा दूर रहना चाहिये। *(भगवचर्च्चा, भाग-३)*

*** *** ***

जो कुछ भी नहीं जाननेपर भी 'सब जाननेवाले' बननेका दम भरते हैं, जो 'सोनेकी चिड़िया' फाँसनेके लिये सदा-सर्वदा ही मिथ्या मधुर भाषण और व्यवहारका जाल बिछाये रखते हैं, जो पूजा करानेके लिये पैर फैलाते तनिक भी संकुचित नहीं होते, जो धन लेकर कानमें मन्त्र फूँकने और ईश्वर-प्राप्तिकी गारंटी देते हैं, 'बहुत ऊँचे आकाशमें उड़नेपर भी बाजकी दृष्टि सड़े मांसपर होती है।' इसी तरह जो बहुत ऊँची-ऊँची वेदान्त और भक्तिकी बातें बनाते रहनेपर भी अपनी पैनी नजर भक्तोंके धनपर रखते हैं, जो पापदृष्टिसे शिष्यकी माता, बहिन या स्त्रीको घूरते हैं, जो युवती शिष्याओंके कानोंमें मन्त्र देते, उनसे एकान्तमें मिलते और उनसे पूजा करवाते हैं, जो मारण, मोहन, उच्चाटन और वशीकरण बतलाते हैं, जो चमत्कार दिखलाते हैं, जो अपने विरुद्ध मतवादियों और स्वार्थमें बाधा पहुँचानेवालोंको धमकाने, मारने या उनका अनिष्ट करनेका उपदेश करते हैं और जो सत्ताके लिये आचार्यका पद ग्रहण किये रहते हैं, ऐसे गुरुओंसे तो यथासाध्य बचना ही चाहिये। ऐसे लोग गुरुके वेषमें शिष्य और संसारको धोखा देनेवाले प्रायः पाखण्डी ही होते हैं, स्वयं नरकगामी होते हैं और अनुयायियोंके लिये नरकका पथ साफ करते हैं। *(भगवचर्च्चा, भाग-३)*

*** *** ***

एक त्यागी संन्यासी थे। संन्यासीजी बड़े विद्वान् थे, बहुत-सी भाषाओंके जानकार थे। भारतवर्षमें भी उनकी जोड़ीके विद्वान् अँगुलियोंपर गिनने लायक होंगे। पढ़े-लिखे समुदायपर उनका बड़ा भारी प्रभाव था। संन्यासीजी बड़े भक्त मालूम होते थे। नारद-भक्ति-सूत्र या श्रीमद्भागवतका श्लोक पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी अजस्र धारा बहने लगती थी। परन्तु यह सब कुछ होनेपर भी अन्तमें वे व्यभिचारी सिद्ध हुए। सम्भव है, वे पहले अच्छे साधक रहे हों, परन्तु पीछेसे पूजा आरम्भ हुई, खानेको खूब माल-मलीदे मिलने लगे, स्त्रियोंका अबाधित संग हुआ, जिससे उनका पतन हो गया।

एक दूसरी जगह एक साधु, जो बाहरसे बड़े ही त्यागी मालूम होते थे, बड़े-बड़े लोग उनके पास जाया करते। वे अपनी झोलीमेंसे भस्मकी चुटकी सबको दिया करते। एक दिन चाय बनी। शिष्यने कहा, 'महाराज! चीनी नहीं है।' गुरुजी बोले, 'नहीं सही, यह भस्मकी चुटकी डाल दो।' झोलीसे चुटकी भरकर चायमें डाल दी, चाय वास्तवमें मीठी हो गयी। स्वामीजीका चमत्कार देखकर सब मुग्ध हो गये। पीछेसे पता लगा—वे अपनी झोलीके एक भागमें भस्म और दूसरे भागमें 'सैकेरिन' (जिसमें चीनीसे कई सौ गुणा मिठास होता है) रखते थे और राखकी जगह उसको डाल चमत्कार बतलाकर लोगोंको ठगा करते थे।

एक आश्रममें एक बड़े त्यागीके रूपमें रहनेवाले संन्यासी उपदंशके रोगसे पीड़ित मिले, ऊपरसे उनका व्यवहार देखकर उन्हें सभी लोग महात्मा समझते थे।

मुम्बईके एक प्रसिद्ध ज्ञानी भक्त कहलानेवाले महाराज, जो अपनेको एक बहुत बड़े आदमीका गुरु बतलाते थे, श्रद्धाके साथ अपने घर ले जानेवाले भक्तकी पत्नीका सतीत्व नष्ट करते पकड़े गये।

ऐसे अनेक उदाहरण हैं। आज कहीं ज्ञान और कहीं भक्तिके नामपर धन लूटा जाता है, तो कहीं सतीत्व हरण होता है, कहीं पूजा-प्रतिष्ठा करवायी जाती है तो कहीं भोग-विलासकी सामग्री इकट्ठी की जाती है। सारांश यह कि आजके इन ज्ञानी भक्त कहलानेवाले रँगे सियार गुरुओंने धर्म-कर्मको चौपट कर दिया है। ऐसे पाखण्डी गुरुओं, भक्तों और ज्ञानियोंसे बचकर ही रहना चाहिये।

(भगवचर्चा, भाग-३)

* * * * * * * * *

यहाँ एक महापुरुष बने हुए हैं, सिद्धिप्राप्त कहते हैं। औषध देते हैं, गुरु बनते हैं, अपनेको ..... संन्यासी तथा ..... गद्दीके शिष्य बतलाते हैं। शराब-मांस उन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। आप अपने चेले-चेलियोंको अपनी थालीमेंसे खिलाकर खाते हैं। चेलियोंसे सर्वस्व अर्पणकी बड़ी चाह है। विरोध करनेमें लोग इसलिये डरते हैं कि ये किसीका कोई अनिष्ट न कर दें। शिष्योंका धन हरण कर रहे हैं। इस प्रकारके दुराचार धर्म और अध्यात्मके नामपर आज जगह-जगह हो रहे हैं और भोले नर-नारी अविवेकपूर्ण श्रद्धाको लेकर जालमें फँस जाते हैं। ऐसे गुरुओंसे न कभी किसीका कल्याण हुआ है, न हो सकता है। *(तत्त्वचिन्तामणि, भाग-७ में टिप्पणी)*

स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती

वर्तमान युगको आधुनिक लोग तो उन्नतिका युग कहते हैं; परन्तु आध्यात्मिक दृष्टिसे देखा जाय तो अध:पतनका ऐसा निकृष्ट युग कभी नहीं आया था। प्रतारणा और विश्वासघात तो इस युगकी विशेष देन है। आजकल ऐसे बहुत-से लोग प्रकट हो गये हैं, जो अपनेको भगवान्‌का सन्देशवाहक अथवा स्वयं भगवान् बताते हैं। भोले-भाले साधक उनकी मीठी-मीठी बातोंमें आकर अथवा उनके अथवा उनके रहस्यात्मक वाग्जालमें फँसकर अपना सर्वस्व खो बैठते हैं और *'माया मिली न राम'* की कहावत चरितार्थ करते हैं।

पहले गुरु वर्षोंतक शिष्यकी परीक्षा करते थे, तब उसे स्वीकार करते थे। परन्तु अब तो गुरुओंकी भरमार हो गयी है, और जैसे बाजारमें दलाल अपनी-अपनी दुकानोंपर लानेके लिये ग्राहकोंको परेशान करते हैं, वैसे ही गुरु कहलानेवाले लोग अपना शिष्य होनेके लिये लोगोंको तरह-तरहसे प्रलोभित करते हैं। *(भक्ति-सर्वस्व)*

स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज

(मानव-सेवा-संघ, वृन्दावनके संस्थापक)

कोई व्यक्ति किसीका गुरु है—इसके समान कोई भूल नहीं है। कोई भी व्यक्ति किसीका सुधारक है—इसके समान कोई भूल नहीं है। मानवका अपना विवेक ही उसका अपना सुधारक है, वही उसका गुरु है, वही उसका नेता है, वही उसका शासक है। *(सन्त-वाणी, भाग-५)*

अगर बाह्य गुरुके बिना तत्त्व-साक्षात्कार नहीं होता तो आप यह बताइये कि सबसे पहले तत्त्व-साक्षात्कार कैसे हुआ होगा? हुआ होगा कि नहीं? आखिर गुरु-परम्परा चली होगी कि नहीं? तो जो सबका गुरु होगा, मानना पड़ेगा कि उसका कोई गुरु नहीं होगा। यदि एक व्यक्तिको भी बिना गुरुके तत्त्व-साक्षात्कार हो सकता है तो यह विधान तो नहीं हुआ कि बिना गुरुके तत्त्व-साक्षात्कार नहीं हो सकता। *(सन्त-वाणी, भाग-६)*

जो उपदेष्टा भगवद्विश्वासकी जगहपर अपने व्यक्तित्वका विश्वास दिलाते हैं और भगवत्सम्बन्धके बदले अपने व्यक्तित्वसे सम्बन्ध जोड़ने देते हैं, वे घोर अनर्थ करते हैं। *(प्रबोधनी)*

दुनियाका बड़े-से-बड़ा गुरु, बड़े-से-बड़ा नेता, बड़े-से-बड़ा राष्ट्र जो काम नहीं कर सकता आपके साथ, अगर आप चाहें तो अपने साथ कर सकते हैं। *(संतवाणी, भाग-३)*

गुरु तो वह होता है, जो गुरु बनकर नहीं आता है, दोस्त बनकर आता है, सुहृद् बनकर आता है, अपना होकर आता है। वह वास्तवमें गुरु होता है। *(जीवन-पथ)*

गुरुका बहाना ढूँढ़ना भी निज विवेकका अनादर ही है। *(मानवकी माँग)*

जो किसीका भी गुरु बनेगा, वह अपना गुरु नहीं बन सकता और जो अपना गुरु नहीं बन सकता, वह जगत्का गुरु नहीं बन सकता। *(संतवाणी, भाग-४)*

आज उपदेष्टा गुरुकी लेशमात्र भी आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता इस बातकी है कि कोई ऐसा वीर परुष या वीर महिला हो, जो किसी उपदेशको स्वीकार कर सके। *(संतवाणी, भाग-४)*

गुरुकी सबसे बड़ी भक्ति यह है कि गुरु मिलना चाहे और शिष्य कहे कि जरूरत नहीं है; क्योंकि जिसने गुरुकी बातको अपनाया, उसमें गुरुका अवतरण हो जाता है। *(संतवाणी, भाग-७)*

कितने उपदेष्टा गुरु अपने शिष्योंके मनकी चंचलता तथा विकारसे दु:खी हैं? कभी एकान्तमें उन लोगोंके दु:खसे दु:खी होकर व्याकुल हुए? अथवा जीवनभर उपदेश ही करते रहे? *(जीवन-पथ)*

गुरु माननेका अधिकार सभीको है और शिष्य बनानेका किसीको अधिकार नहीं। *(सन्त-जीवन-दर्पण)*

ज्ञानका जिज्ञासु ही शिष्य है। शिष्य गुरु होनेके लिये गुरुकी शरणमें जाता है। गुरु वही है जो शिष्यको गुरु बना सके; क्योंकि गुरुके मिलते ही शिष्य गुरु हो जाता है। गुरुकी आवश्यकता गुरु होनेके लिये होती है, शिष्य होनेके लिये नहीं। शिष्य तो उसी समयतक है, जबतक गुरु नहीं मिला। *(सन्त-समागम, भाग-१)*

अगर कहीं गुरु बन जाओ तो भगवान्ने कहा कि मेरे प्रेमसे वंचित रहो, चेले-चेलीमें रमण करो। *(सन्त-समागम, भाग-२)*

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज

गुरुके विषयमें एक दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

गुरु गोबिन्द दोउ खड़े, किनके लागूँ पाय।
बलिहारी गुरुदेव की, गोबिन्द दियो बताय॥

गोविन्दको बता दिया, सामने लाकर खड़ा कर दिया, तब गुरुकी बलिहारी होती है। गोविन्द तो बताया नहीं और गुरु बन गये—यह कोरी ठगाई है। केवल गुरु बन जानेसे गुरुपना सिद्ध नहीं

होता। इसलिये अकेले खड़े गुरुकी महिमा नहीं है। महिमा उस गुरुकी है, जिसके साथ गोविन्द भी खड़े हैं—***'गुरु गोविन्द दोउ खड़े'*** अर्थात् जिसने भगवान्‌की प्राप्ति करा दी है।

वास्तविक गुरु वह होता है जिसमें केवल चेलेके कल्याणकी चिन्ता होती है। जिसके हृदयमें हमारे कल्याणकी चिन्ता ही नहीं है, वह हमारा गुरु कैसे हुआ? जो हृदयमें हमारा कल्याण चाहता है, वही हमारा वास्तविक गुरु है, चाहे हम उसको गुरु मानें या न मानें और वह गुरु बने या न बने। उसमें यह इच्छा नहीं होती कि मैं गुरु बन जाऊँ, दूसरे मेरेको गुरु मान लें, मेरे चेले बन जायँ। जिसके मनमें धनकी इच्छा होती है, वह धनदास होता है। ऐसे ही जिसके मनमें चेलेकी इच्छा होती है, वह चेलादास होता है।

गुरु बनानेपर उसकी महिमा बताते हैं कि गुरु गोविन्दसे बढ़कर है। इसका नतीजा यह होता है कि चेला भगवान्‌के भजनमें न लगकर गुरुके भजनमें लग जाता है। यह बड़े अनर्थकी, नरकोंमें ले जानेवाली बात है!

जो गुरु अपनी फोटो देते हैं, उसको गलेमें धारण करवाते हैं, उसकी पूजा और ध्यान करवाते हैं, वे धोखा देनेवाले होते हैं। कहाँ तो भगवान्‌का चिन्मय पवित्र शरीर और कहाँ हाड़-माँसका जड़ अपवित्र शरीर! जहाँ भगवान्‌की पूजा होनी चाहिये, वहाँ हाड़-मांसके पुतलेकी पूजा होना बड़ा भारी दोष है। जैसे राजासे वैर करनेवाला, उसके विरुद्ध चलनेवाला राजद्रोही होता है, ऐसे ही अपनी पूजा करवानेवाला भगवद्द्रोही होता है।

आजकलके गुरु चेलेको भगवान्‌की तरफ न लगाकर अपनी तरफ लगाते हैं, उनको भगवान्‌का न बनाकर अपना बनाते हैं। यह बड़ा भारी अपराध है (अपराध पापसे ज्यादा भयंकर होता है)। एक जीव परमात्माकी तरफ जाना चाहता है, उसको अपना चेला बना लिया तो अब वह गुरुमें अटक गया। अब वह भगवान्‌की तरफ कैसे जायगा? गुरु भगवान्‌की तरफ जानेमें रुकावट डालनेवाला हो गया!

मेरेसे कोई सम्मति ले तो मैं कहूँगा कि सत्संग करो और जितना ले सको, उतना लाभ लो, पर किसीको गुरु मत बनाओ। जहाँ-जहाँसे अच्छी बातें मिलें, वहाँ-वहाँसे उनको लेते रहो और जहाँ अच्छी बात न मिले, वहाँसे चल दो। गुरु बनाकर बँधो मत।

सच्चे गुरु (साधु) अपना साक्षात्कार-दिवस अथवा अवतरण-दिवस नहीं मानते हैं और न ही अनेक आश्रम व चेले बनाते हैं, न ही अपने आपको ब्रह्मज्ञानी कहते हैं तथा न ही अपनी पूजा करवाते हैं। सच्चे गुरु (सन्त) कभी छोटा नहीं बनाते, अपने बराबरका ही बनाते हैं; जैसे-भगवान् श्रीरामजी सखा ही बनाते हैं, शिष्य नहीं बनाते।

भगवान्‌के साथ जीवमात्रका स्वतन्त्र सम्बन्ध है। उसमें किसी दलालकी जरूरत नहीं है। हम पहले गुरु बनायें, फिर गुरु हमारा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़े तो भगवान् हमारेसे एक पीढ़ी दूर हो गये। हम पहलेसे ही सीधे भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ लें तो बीचमें दलालकी जरूरत ही नहीं।

वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो शरीर मल-मूत्र बनानेकी एक मशीन ही है। इसको उत्तम-से-उत्तम भोजन या भगवान्‌का प्रसाद खिला दो तो वह मल बनकर निकल जायगा तथा उत्तम-से-उत्तम पेय या गंगाजल पिला दो तो वह मूत्र बनकर निकल जायगा। जबतक प्राण हैं, तबतक तो यह शरीर मल-मूत्र बनानेकी मशीन है और प्राण निकल जानेपर यह मुर्दा है, जिसको छू लेनेपर स्नान करना पड़ता है। वास्तवमें यह शरीर प्रतिक्षण ही मर रहा है, मुर्दा बन रहा है। इसमें जो वास्तविक तत्त्व (चेतन) है, उसका चित्र तो लिया ही नहीं जा सकता। चित्र लिया जाता है उस शरीरका, जो प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। इसलिये चित्र लेनेके बाद शरीर भी वैसा नहीं रहता, जैसा चित्र लेते समय था। इसलिये चित्रकी पूजा तो असत् ('नहीं')-की ही पूजा हुई। चित्रमें चित्रित शरीर निष्प्राण रहता है, अतः हाड़-मांसमय अपवित्र शरीरका चित्र तो मुर्देका भी मुर्दा हुआ!

हम अपनी मान्यतासे जिस पुरुषको महात्मा कहते हैं, वह अपने शरीरसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद हो जानेसे ही महात्मा है, न कि शरीरसे सम्बन्ध रहनेके कारण। शरीरको तो वे मलके समान समझते हैं। अतः महात्माके कहे जानेवाले शरीरका आदर करना मलका आदर करना हुआ! क्या यह उचित है? यदि कोई कहे कि जैसे भगवान्‌के चित्रकी पूजा आदि होती है, वैसे ही महात्माके चित्रकी भी पूजा आदि की जाय तो क्या आपत्ति है? तो यह कहना भी उचित नहीं है। कारण कि भगवान्‌का शरीर चिन्मय एवं अविनाशी होता है, जबकि महात्माका कहा जानेवाला शरीर पांचभौतिक होनेके कारण जड़ एवं विनाशी होता है।

भगवान् सर्वव्यापी हैं; अतः वे चित्रमें भी हैं; परन्तु महात्माकी सर्वव्यापकता (शरीरसे अलग) भगवान्‌की सर्वव्यापकताके अन्तर्गत होती है। एक भगवान्‌के अन्तर्गत समस्त महात्मा हैं; अतः भगवान्‌की पूजाके अन्तर्गत सभी महात्माओंकी पूजा स्वतः हो जाती है। यदि महात्माओंके हाड़-मांसमय शरीरोंकी तथा उनके चित्रोंकी पूजा होने लगे तो इससे पुरुषोत्तम भगवान्‌की ही पूजामें बाधा पहुँचेगी, जो महात्माओंके सिद्धान्तसे सर्वथा विपरीत है। **महात्मा तो संसारमें लोगोंको भगवान्‌की ओर लगानेके लिये आते हैं न कि अपनी ओर लगनेके लिये। जो लोगोंको अपनी ओर (अपने ध्यान, पूजा आदिमें) लगाता है, वह तो भगवद्विरोधी होता है।** वास्तवमें महात्मा कभी शरीरमें सीमित होता ही नहीं।

वास्तविक जीवनी या चरित्र वही होता है, जो सांगोपांग हो अर्थात् जीवनकी अच्छी-बुरी (सद्‌गुण, दुर्गुण, सदाचार, दुराचार आदि) सब बातोंका यथार्थरूपसे वर्णन हो। अपने जीवनकी समस्त घटनाओंको यथार्थरूपसे मनुष्य स्वयं ही जान सकता है। दूसरे मनुष्य तो उसकी बाहरी क्रियाओंको देखकर अपनी बुद्धिके अनुसार उसके बारेमें अनुमानमात्र कर सकते हैं, जो प्रायः यथार्थ नहीं होता। आजकल जो जीवनी लिखी जाती है, उसमें दोषोंको छिपाकर गुणोंका ही मिथ्यारूपसे अधिक वर्णन करनेके कारण वह सांगोपांग तथा पूर्णरूपसे सत्य होती ही नहीं। वास्तवमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके चरित्रसे बढ़कर और किसीका चरित्र क्या हो सकता है! अतः उन्हींके चरित्रको पढ़ना-सुनना चाहिये और उसके अनुसार अपना जीवन बनाना चाहिये। जिसको हम महात्मा मानते हैं, उसका सिद्धान्त और उपदेश ही श्रेष्ठ होता है, अतः उसीके अनुसार अपना जीवन बनानेका यत्न करना चाहिये।

(एक सन्तकी वसीयत)

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंसे संगृहीत वाक्य

१. भगवान्‌ने विवेकरूपी गुरु सबको दिया है। असली गुरु वही है। अपने विवेकके अनुसार काम करो तो किसी गुरु आदिकी जरूरत नहीं। वह विवेक ही बोध करा देगा। (१०.६.९१, प्रातः ५, ऋषिकेश; १८.८.९८, प्रातः ८.३०, जोधपुर)

२. गुरु मत बनाओ, गुरु बनानेकी सलाह मैं नहीं देता। बनाये हुए गुरुसे कभी कल्याण नहीं होता। वह अन्य सम्बन्धोंकी तरह एक सम्बन्ध है। वास्तवमें गुरु बनाया नहीं जाता, गुरु बन जाता है। जिससे प्रकाश मिले, वही गुरु है। (२८.७.९१ एवं १८.९.९१, सायं ४.४५, जयपुर; २७.११.९४, प्रातः ७.४५, विराटनगर)

३. गुरु वह है, जो भगवान्‌की पूजा-उपासना कराये। जो अपनी पूजा कराये, वह गुरु नहीं, कालनेमि है। गुरु बनकर अपनी पूजा करानेवाला 'भगवद्द्रोही' है। शरीरको अपना स्वरूप मानना पशुबुद्धि है। अपनी फोटो देना और पुजवाना पशुबुद्धि है, गुरुबुद्धि नहीं। सच्चा गुरु भगवान्‌का ही पूजन करवाता है। (३.९.९२, प्रातः ८.३०, मथानिया; २.६.९६ एवं ७.६.९६, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश)

४. जहाँ कनक-कामिनीकी इच्छा है, वहाँ सावधान हो जाओ। वहाँ भगवान्‌की प्राप्ति नहीं है, नहीं है, नहीं है! (२३.१२.९३, प्रातः ८.३०, कोलकाता)

५. जो हमसे कुछ भी चाहता है, वह हमारा गुरु कैसे हुआ? वह हमें कैसे निहाल करेगा? (९.९.९५, प्रातः ८.३०, जोधपुर)

६. जो कहता है कि पहले मेरा चेला बनो, फिर बताऊँगा, वहाँ समझो कि कोई कालनेमि है। (२.६.९६, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश)

७. सच्चे संत प्रायः गुरु बनते नहीं; क्योंकि गुरु बननेमें अपना भी नुकसान है, शिष्यका भी नुकसान है। आप सबसे प्रार्थना है कि गुरुके जालमें कभी मत फँसना। गुरु बनानेकी बिल्कुल जरूरत नहीं है। गुरु बनानेसे लाभ नहीं होगा। गुरु बनाना बड़ी आफतमें जाना है। (५.१०.९७, प्रातः ८.३०, नोहर; १३.४.९९, प्रातः ८ पुरी; ३१.५.९९, सायं ४, ऋषिकेश; १२.९.९९, प्रातः ८.३०, नोखा)

८. सत्संग करो, पर गुरु मत बनाओ। भगवान्‌को पकड़ो, व्यक्तिको मत पकड़ो। अगर कोई अपना कल्याण चाहे तो उसे किसीसे भी कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये। अच्छे संत मिल जायँ तो भी गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मत जोड़ो। जो साधन ठीक समझमें आये, वह साधन करो, पर सम्बन्ध मत जोड़ो। सम्बन्ध जोड़ोगे तो बँध जाओगे। (१३.०६.९६, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश; १६.१.०१, प्रातः ९, नागपुर)

९. गुरुसे लिये बिना मन्त्र, नामका असर नहीं होता—यह प्रचार भी उनका किया गया है, जिनको गुरु बननेका शौक है। (११.८.९७, प्रातः ८.३०, सीकर)

१०. स्त्रीको किसी भी पुरुषके साथ सम्बन्ध नहीं जोड़ना चाहिये। उसके लिये गुरुका ज्ञान (गुरु बनाना) बड़ा भयंकर है, व्यभिचारका मूल है! (२२.५.९९, प्रातः ८.३०, ऋषिकेश)

११. कोई अच्छा गुरु मिलेगा तब उद्धार होगा—यह बात मनसे निकाल दो। वास्तवमें आपकी ही लगन, लालसा, मान्यता, श्रद्धा काममें आयेगी, गुरु कल्याण नहीं करेगा। लाखों गुरु हो गये, फिर

भी अबतक हमारी मुक्ति क्यों नहीं हुई? मुक्ति हमारी लगनसे होगी। गुरु बनानेसे मुक्ति नहीं होगी, उल्टे नरकोंमें जाओगे। बिना गुरु बनाये बहुत जल्दी कल्याण हो सकता है, केवल लगनकी कमी है। (९.८.९७ एवं ११.८.९७, प्रातः ८.३०, सीकर)

१२. कोई साधन करना चाहे तो वह सम्प्रदायके झमेलेमें कभी मत पड़े। (२५.११.९३, दोपहर २.३०, वृन्दावन)

१३. अगर सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहते हो तो गुरु-शिष्यका सम्बन्ध मत जोड़ो। गुरु बनानेसे आजकलके जमानेमें कल्याण हो जाय—यह मुझे प्रतीत नहीं होता। मेरी अज्ञता मानो या अभिमान, पर देखनेपर, विचार करनेपर भी मुझे कोई भगवत्प्राप्त दीखता नहीं। (२८.९.९८, सायं ४, वृन्दावन)

१४. अगर कोई कह दे कि चेला बननेपर मैं भगवान्‌के दर्शन करा दूँगा, मुक्ति दे दूँगा तो मैं उसका चेला बननेको तैयार हूँ। (९.८.९७, प्रातः ८.३०, सीकर; १३.९.९९, प्रातः ८.३०, नोखा)

१५. गुरु बनानेसे एक रत्तीका भी फर्क नहीं पड़ता। गुरु मत बनाओ; बनाया है तो छोड़ दो और भगवान्‌में लग जाओ। लाभ हो तो आपका, नुकसान हो तो मेरा! अगर गुरुको छोड़नेसे पाप लगता हो तो वह पाप मुझे स्वीकार है। वह पाप मुझे दे दो और आप निर्मल हो जाओ। (११.८.९७, प्रातः ८.३०, सीकर; ११.१.९९, प्रातः ९, सूरत)

१६. गुरु कल्याण कर देगा—इस ठगाईमें मत आना। इसमें धोखा है। पहले ही फँसे हुए हो और गुरु मिल जाय तो गजब हो जायगा, और फँस जाओगे! कोई गुरु मिल गया तो भाग्य फूट गया! (१७.१.९९, प्रातः ९, ढालेगाँव)

१७. कुछ लोग कहते हैं कि जिसने गुरु नहीं बनाया, उसके हाथका पानी नहीं पीना चाहिये, तो मैं कहता हूँ कि जिसने गुरु बनाया है, उसके हाथका पानी नहीं पीना चाहिये। (९.१.०१, प्रातः ८.३०, हैदराबाद)

१८. मैंने कभी किसीको गुरु नहीं बनाया। माँने चार वर्षकी आयुमें साधु बना दिया। चार वर्षका बालक क्या जाने कि क्या गुरु होता है, क्या चेला होता है? गुरुने ही मुझे चेला बना लिया। मैंने सन्त-महापुरुषोंसे लाभ लिया है, उनकी आज्ञा मानी है, पर उनसे गुरु-शिष्यका सम्बन्ध नहीं जोड़ा, उनको गुरु नहीं बनाया। (२.६.९६, प्रातः ८.३० एवं १९.६.९८ सायं ४, ऋषिकेश)

१९. आप स्वयं अपना कल्याण नहीं करोगे तो कल्याण नहीं होगा, नहीं होगा। लाखों गुरु बना लो तो भी कल्याण नहीं होगा। जब भूख भी खुद रोटी खानेसे ही मिटती है, फिर कल्याण दूसरा कैसे करेगा? आपकी लगनके बिना भगवान् भी आपका कल्याण नहीं कर सकते, फिर गुरु कर देगा, महात्मा कर देगा—इस ठगाईमें, इस चक्करमें मत आना। इसमें धोखा है, धोखा है! पहले ही फँसे हुए हो, गुरु मिल जाय तो और फँस जाओगे! (१७.१.९९, प्रातः ९, ढालेगाँव)

२०. गुरु बनना बड़ा भारी अपराध है, मामूली अपराध नहीं। भगवान्‌की तरफ जाते हुएको रोककर अपनी तरफ खींच लेना, अपना चेला बना लेना कितना बड़ा अपराध है! (६.२.९९, प्रातः ९, गाँधीधाम)

२१. गुरु बनना बड़े खतरेकी बात है। सच्चे सन्त प्रायः गुरु बनते नहीं; क्योंकि गुरु बननेसे अपना भी नुकसान है, शिष्यका भी नुकसान है। (१३.४.९९, प्रातः ८, पुरी)

२२. मैं गुरुकी निन्दा नहीं करता हूँ। मैं रोजाना व्याख्यानमें गुरुको नमस्कार करता हूँ। परन्तु आजकल पाखण्डका जमाना है। सिवाय ठगीके कुछ नहीं है। जो कहता है कि चेला बन जाओ, फिर बतायेंगे, वह बिलकुल ठग है.....बिलकुल ठग है.....बिलकुल ठग है। दुकानदारीके सिवाय कुछ

नहीं है। (९.१०.२०००, सायं ४, जयपुर)

२३. जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णके रहते हुए कोई निगुरा नहीं है। कारण कि भगवान् श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं—'**कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्**' और हम जगत्के भीतर हैं, बाहर नहीं। भगवान्के सिवाय गुरुको भी अपना मान लिया तो इससे बाधा लगी है, लाभ नहीं हुआ है। मेरी सम्मति है कि आप भगवान्को ही गुरु मान लो, किसी मनुष्यके फेरमें मत पड़ो। (२७.६.९९, प्रातः ८.३० एवं २८.९.०१, सायं ३.३०, ऋषिकेश)

कलियुगी गुरु और सच्चा गुरु

एक सुन्दर बाल-विधवाके घरपर उसका गुरु आया। विधवा देवीने श्रद्धा-भक्तिके साथ गुरुको भोजन कराया। फिर वह गुरुके सामने उपदेश पानेके लिये बैठ गयी। गुरुके मनमें उसके रूप-यौवनको देखकर पाप आ गया और उसने उसे अपने कपट-जालमें फँसानेके लिये तरह-तरहकी युक्तियोंसे आत्मनिवेदनका महत्त्व बताकर यह समझाना चाहा कि जब वह उसकी शिष्या है तो फिर उसे अपने-आपको समर्पित करके अपनी देहके द्वारा गुरुकी सेवा करनी चाहिये। गुरु खूब पढ़ा-लिखा था; अतः उसने बहुत-से तर्कोंके द्वारा शास्त्र-प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया कि यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो गुरु-कृपा नहीं होगी, और गुरु-कृपा न होनेसे नरकोंकी प्राप्ति होगी।

विधवा देवी बड़ी बुद्धिमती, विचारशीला और अपने सतीधर्मकी रक्षामें तत्पर थी। वह गुरुके नीच अभिप्रायको समझ गयी। उसने बड़ी नम्रताके साथ कहा—

'गुरुजी, आपकी कृपासे मैं इतना तो जान गयी हूँ कि गुरुकी सेवा करना शिष्याका परमधर्म है। परन्तु भाग्यहीनताके कारण मुझे सेवाका कोई अनुभव नहीं है। इसलिये मैं यथासाध्य गुरुके चरणकमलोंको हृदयमें विराजित करके अपने नेत्र, कान आदि इन्द्रियोंसे उनकी सेवा करती हूँ। नेत्रोंसे उनके स्वरूपके दर्शन और कानोंसे उनके उपदेशामृतका पान आदि करती हूँ। केवल दो नीच इन्द्रियोंको, जिनसे मल-मूत्र बहा करता है, मैंने सेवामें नहीं लगाया; क्योंकि गुरुकी सेवामें उन्हीं चीजोंको लगाना चाहिये, जो पवित्र हों। मल-मूत्रके गड्ढेमें मैं गुरुको कैसे बिठाऊँ? इसी कारण उन गन्दे अंगोंको मैं कपड़ोंसे ढककर रखती हूँ कि कहीं पवित्र गुरु-सेवामें बाधा न आ जाय! इतनेपर भी यदि गुरु-कृपा न हो क्या उपाय है! पर सच्चे गुरु ऐसा क्यों करने लगे? जो गुरु भक्तिरूपी सुधा पाकर भी मूत्राशयकी ओर ललचायी आँखोंसे देखते हैं, शिष्याके चेहरेकी और दयादृष्टिसे न देखकर नरकके मुख्य द्वार—मूत्र बहानेवाली दुर्गन्धियुक्त नालियोंकी ओर ताकते हैं, ऐसे गुरुके प्रति आत्मनिवेदन न करके उनके मुखपर कालिख ही पोतनी चाहिये और झाड़ुओंसे उनका सत्कार करना चाहिये।'

यह सुनकर गुरुजी चुपचाप वहाँसे चल दिये!

*** *** ***

तपस्वी जुन्नून एक पहाड़पर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि एक झोंपड़ीके दरवाजेपर एक साधु बैठा है। उसका एक पैर झोंपड़ीके भीतर है और दूसरा कटा हुआ पैर झोंपड़ीके बाहर पड़ा है और उसपर असंख्य चींटियाँ लगी हैं। जुन्नूनने उसके पास जाकर प्रणाम किया और उससे इसका कारण पूछा। उस साधुने कहा—

'एक दिन मैं झोंपड़ीके भीतर बैठा था। उधरसे एक जवान स्त्री निकली। उसे देखकर मेरा मन चंचल हो गया और मैं उसे अच्छी तरह देखनेके लिये खड़ा हुआ। ज्यों ही अपना एक पैर झोंपड़ीके

बाहर रखा, त्यों ही आकाशवाणी सुनायी दी—*अरे साधु! तुझे जरा भी शर्म नहीं आती! तू तीस वर्षसे एकान्तमें भजन कर रहा है और भक्तके नामसे विख्यात है। इतनेपर भी आज तू शैतानके फन्देमें फँसने जा रहा है!* आकाशवाणी सुनते ही मेरा शरीर काँप उठा! जो पैर झोंपड़ीके बाहर निकला था, उसे मैंने तुरन्त काटकर फेंक दिया। तबसे मैं यहीं बैठा हूँ।'

यह साधु सच्चा भक्त था।

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

गुरु कैसा हो?

(परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

जिस गुरु, सन्त-महापुरुषमें ये बातें हों—

१-जो हमारी दृष्टिमें वास्तविक बोधवान्, तत्त्वज्ञ दीखते हों और जिनके सिवाय और किसीमें वैसी अलौकिकता, विलक्षणता न दीखती हो।

२-जो कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि साधनोंको तत्त्वसे ठीक-ठीक जाननेवाले हों।

३-जिनके संगसे, वचनोंसे हमारे हृदयमें रहनेवाली शंकाएँ बिना पूछे ही स्वतः दूर हो जाती हों।

४-जिनके पासमें रहनेसे प्रसन्नता, शान्तिका अनुभव होता हो।

५-जो हमारे साथ केवल हमारे हितके लिये ही सम्बन्ध रखते हुए दीखते हों।

६-जो हमारेसे किसी भी वस्तुकी किंचिन्मात्र भी आशा न रखते हों।

७-जिनकी सम्पूर्ण चेष्टाएँ केवल साधकोंके हितके लिये ही होती हों।

८-जिनके पासमें रहनेसे लक्ष्यकी तरफ हमारी लगन स्वतः बढ़ती हो।

९-जिनके संग, दर्शन, भाषण, स्मरण आदिसे हमारे दुर्गुण-दुराचार दूर होकर स्वतः सद्गुण-सदाचाररूप दैवी सम्पत्ति आती हो।

—'सच्चा गुरु कौन?' से